गोरा

अध्याय 15

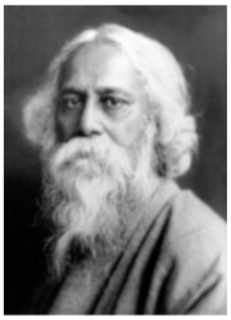

हिन्दी ADDA

रविंद्रनाथ टैगोर

गोरा

अध्याय 15

https://www.hindiadda.com/gora-part-xv/

परेशबाबू ने कहा, "विनय, ललिता को एक मुसीबत से उबारने के लिए तुम कोई दुस्साहस पूर्ण काम कर बैठो, ऐसा मैं नहीं चाहता। समाज की आलोचना का अधिक मूल्य नहीं है, जिसे लेकर आज इतनी हलचल है, दो दिन बाद वह किसी को याद भी न रहेगा।"

विनय ललिता के प्रति कर्तव्य निबाहने के लिए ही कमर कसकर आया था, इस विषय में स्वयं उसे ज़रा भी संदेह नहीं था। वह जानता था कि ऐसे विवाह से समाज में मुश्किल होगी, और इससे भी अधिक गोरा बहुत ही नाराज़ होगा, लेकिन केवल कर्तव्य-बुध्दि के सहारे इन सब अप्रिय कल्पनाओं को उसने मन से निकाल दिया था। ऐसे मौके पर परेशबाबू ने जब सहसा उस कर्तव्य-बुध्दि को एक बारगी बरखास्त कर देना चाहा तब विनय एकाएक उसे छोड़ न सका।

वह बोला, "आप लोगों का स्नेह-ऋण मैं कभी नहीं चुका सकूँगा। मेरी वजह से आपके परिवार में क्षणिक भी ज़रा-सी अशांति हो, यह भी मेरे लिए असह्य है।"

परेशबाबू ने कहा, "विनय, मेरी बात तुम ठीक तरह समझ नहीं पा रहे हो। हम लोगों के प्रति तुम्हारी जो श्रध्दा है वह मेरे लिए बड़ी प्रसन्नता की बात हैं लेकिन उस श्रध्दा का कर्तव्य पूरा करने के लिए ही तुम मेरी कन्या से विवाह करने को प्रस्तुत हुए हो, यह मेरी कन्या के लिए श्रध्दा की बात नहीं है। इसीलिए मैंने तुमसे कहा कि यह संकट ऐसा बड़ा नहीं है कि इसके लिए तुम्हारा त्याग स्वीकार करने की ज़रूरत हो।"

विनय को समझो, कर्तव्य के बोझ से तो छुट्टी मिल गई। लेकिन पिंजरे का द्वार खुला पाकर पंछी जैसे फड़फड़ाकर उड़ जाता है, विनय का मन तो छुटकारे के मार्ग पर वैसे नहीं दौड़ा। बल्कि वह तो हिलना ही नहीं चाहता। कर्तव्य-बुध्दि का सहारा लेकर बहुत दिनों के संयम के बाँध को उसने अनावश्यक कहकर तोड़ दिया था। जहाँ पहले मन डर-डरकर पैर रखता था और अपराधी-सा सकुचाकर लौट आता था, वहाँ वह अब जड़ जमाकर बैठ गया है और अब उसे लौटा लाना कठिन हो गया है। उसे हाथ पकड़कर जो कर्तव्य-बुध्दि यहाँ तक लाई थी, वह कहती है- अब और आगे जाने की ज़रूरत नहीं है, भई, चलो लौट चलें- पर कहता है-तुम्हें ज़रूरत न हो तो तुम लौट जाओ, मैं तो यहीं बस जाऊँगा।

जब परेशबाबू ने कहीं कोई ओट नहीं छोड़ी, तब विनय ने कहा, "आप ऐसा कभी न सोंचे कि मैं कर्तव्य के आह्नान पर एक कष्ट स्वीकार करने जा रहा हूँ। आप लोगों

की स्वीकृति मिल जाए इससे बड़ा सौभाग्य मेरे लिए और कुछ नहीं हो सकता, मुझे इतना ही भय है कि कहीं.... "

सत्य-प्रेमी परेशबाबू ने बिना संकोच के कह दिया, "तुम्हें जो भय है, उसका कोई कारण नहीं है। सुचरिता से मैंने सुना है, ललिता का मन तुम्हारे प्रति विमुख नहीं है"

विनय के मन में आनंद की लहर-सी दौड़ गई। ललिता के मन का रहस्य सुचरिता जान गई है! उसने कब जाना, कैसे जाना? दो सखियों में इशारे और अनुमान से जो बातचीत हुई होगी, उसके गहरे रहस्यमय सुख से विनय बिध्द हो उठा।

विनय ने कहा, "यदि आप लोग मुझे इस योग्य समझें तो मेरे लिए इससे बड़े आनंद की बात कुछ और नहीं हो सकती।"

परेशबाबू ने कहा, "तुम ज़रा रुको- एक बार मैं ऊपर हो आऊँ।"

वह वरदासुंदरी की राय लेने गए तो वरदासुंदरी ने कहा, "विनय को दीक्षा लेनी होगी।"

परेशबाबू ने कहा, "वह तो लेनी ही होगी।"

वरदासुंदरी ने कहा, "यह पहले तय हो जाय। विनय को यही बुलवा लो न!"

विनय के ऊपर आने पर वरदासुंदरी ने कहा, "तब दीक्षा का दिन तो ठीक करना होगा।"

विनय ने कहा, "दीक्षा की क्या ज़रूरत है?"

वरदासुंदरी ने कहा, "ज़रूरत नहीं है? तुम क्या कह रहे हो? नहीं तो ब्रह्म-समाज में तुम्हारा विवाह होगा कैसे?"

विनय चुपचाप सिर झुकाए बैठा रहा। वह उनके घर में विवाह करने को राज़ी हुआ है, यह सुनकर ही परेशबाबू ने मान लिया था कि वह दीक्षा लेकर ब्रह्म-समाज में प्रवेश करेगा।

विनय ने कहा, "ब्रह्म-समाज के धर्म-मत में तो श्रध्दा है और अब तक मेरा व्यवहार भी उनके विरुध्द नहीं रहा। फिर भी क्या खास तौर से दीक्षा लेने की ज़रूरत है?"

वरदासुंदरी ने कहा, "जब मत मिलता ही है तब दीक्षा लेने में ही क्या हर्ज है?"

विनय ने कहा, "मैं हिंदू-समाज का कुछ नहीं हूँ, यह बात तो मैं कभी नहीं कह सकता।"

वरदासुंदरी बोलीं, "तब इस बारे में बात करना ही आपकी ज्यादती है। क्या आप हम लोगों पर उपकार करने के लिए दया करके मेरी लड़की से ब्याह करने को राजी हुए हैं?"

विनय को गहरी ठेस पहुँची, उसे दीख गया कि उसका प्रस्ताव सचमुच इन लोगों के लिए अपमानजनक हो गया है।

कुछ ही समय पहले सिविल मैरिज का कानून पास हुआ था। उस समय गोरा और विनय ने अखबारों में इस कानून के विरुध्द बड़ी कड़ी आलोचना की थी। आज उसी सिविल मैरिज को स्वीकार करके विनय घोषित करेगा कि 'मैं हिंदू नहीं हूँ' यह तो उसके लिए बड़ा मुश्किल होगा।

विनय हिंदू-समाज में रहकर ललिता से विवाह करेगा, यह प्रस्ताव परेशबाबू स्वीकार नहीं कर सके। एक लंबी साँस लेकर विनय उठ खड़ा हुआ और दोनों को नमस्कार करके बोला, "मुझे क्षमा कर दीजिए, मैं अपना अपराध और नहीं बढ़ाऊँगा।"

इतना कहकर विनय बाहर निकल आया। सीढ़ी के पास आकर उसने देखा, सामने के बरामदे के एक कोने में ललिता एक छोटा डेस्क लिए अकेली बैठकर चिट्ठी लिख रही है। पैरों की आहट पाकर ललिता ने नज़र उठाकर विनय के चेहरे की ओर देखा। उसकी वह पल-भर की चितवन विनय के मन को व्यथित कर गई। विनय के साथ ललिता का परिचय नया नहीं था, कितनी ही बार वह उसके चेहरे की ओर ऑंखें उठाकर देख चुकी थी, लेकिन आज की इस चितवन में न जाने कैसा एक रहस्य था! सुचरिता ने ललिता के मन का जो रहस्य जान लिया है वही रहस्य आज ललिता की काली ऑंखों की पलकों की छाया में करुणा से पूरित एक सजल स्निग्ध मेघ-सा विनय को दिखाई दिया। विनय की भी पल-भर की दृष्टि में उसके हृदय की सारी वेदना बिजली-सी कौंध गई। वह बिना बातचीत किए ललिता को नमस्कार करके सीढ़ियाँ उतरकर चला गया।

जेल से बाहर आते ही गोरा ने देखा, परेशबाबू और विनय फाटक के बाहर उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

एक महीना कोई ज्यादा लंबा नहीं है। एक महीना से भी अधिक समय गोरा बंधु-बांधवों से अलग होकर भ्रमण करता रहा है लेकिन जेल के एक महीना के विच्छेद के उपरांत बाहर आकर परेशबाबू और विनय को देखकर उसे ऐसा लगा मानो उसने पुराने बांधवों के परिचित संसार में फिर से जन्म लिया हो। उसी राजपथ पर खुले आकाश के नीचे प्रभात के प्रकाश में परेशबाबू के शांत, सौम्य, स्नेहपूर्ण चेहरे को देखकर उसने जिस भक्ति और आनंद से उनकी चरण-धूलि ली वैसे पहले कभी नहीं ली थी। परेशबाबू ने उसे गले से लगा लिया।

विनय का हाथ पकड़कर हँसकर गोरा ने कहा, "विनय, स्कूल से लेकर बराबर तुम्हारे साथ ही शिक्षा पाता आया हूँ, लेकिन इस स्कूल में तो चकमा देकर तुमसे आगे निकल गया।"

विनय हँस नहीं सका, कुछ कह भी न सका। जेल के अपरिचित दु:खों के भीतर से होकर उसका बंधु उसके लिए मानो बंधु से कुछ बड़ा होकर बाहर आया है। एक गंभीर मनोभाव में वह चुप ही रह गया। गोरा ने पूछा, "माँ कैसी है?"

विनय ने कहा, "अच्छी तरह है।"

परेशबाबू ने कहा, "चलो भाई, गाड़ी तुम्हारे लिए इंतज़ार कर रही है।" तीनों गाड़ी पर सवार हो रहे थे कि हाँफता हुआ अविनाश आ पहुँचा। उसके पीछे-पीछे लड़कों की टोली भी थी।

अविनाश को देखते ही गोरा जल्दी से गाड़ी पर सवार होने लगा था, लेकिन उससे पहले ही पहुँचकर अविनाश ने रास्ता रोकते हुए कहा, "गौरमोहन बाबू, ज़रा रुकिए।" उसके यह कहते न कहते लड़कों ने चिल्ला-चिल्लाकर गाना शुरू कर दिया:

"दु:ख निशीथिनी हल आजि भोर

काटिल काटिल अधीनता-डोर!"

गोरा का चेहरा सुर्ख हो उठा। उसने अपने वज्र-स्वर में गरजकर कहा, "चुप करो!"

लड़के अचकचाकर चुप हो गए। गोरा ने पूछा, "अविनाश, यह सब क्या मामला है?"

अपनी शाल के भीतर से अविनाश ने केले के पत्ते में लिपटा हुआकुंद के फूलों का मोटा हारा निकाला और उसके अनुवर्त्ती एक किशोर लड़के ने सुनहली छपाई के एक

कागज से चाभी से चलने वाले आर्गन बाजे की तरह महीन आवाज़ में तेज़ी से कारामुक्ति का अभिनंदन पढ़ना शुरू कर दिया।

अविनाश की माला को खीझ से एक ओर हटाते हुए गोरा ने दबे हुए गुस्से से कहा, "जान पड़ता है अब तुम्हारा नाटक शुरू हुआ। आज सड़क पर अपनी पाई के साथ मेरा स्वाँग सजाने के लिए ही क्या तुम एक महीने से राह देख रहे थे?"

कई दिन पहले से अविनाश ने यह योजना बना रखी थी; उसने सोचा था कि सबको अचंभे में डाल देगा। हम जिस समय की बात कह रहे हैं उस समय ऐसे आयोजनों का चलन नहीं था। अविनाश ने अपनी मंत्रणा में विनय को भी शामिल नहीं किया था, इस अपूर्व कार्य की सारी वाहवाही वही लेगा यही उसका विचार था। यहाँ तक कि अखबारों के लिए उसका विवरण भी उसने स्वयं लिखकर तैयार रखा हुआ था, लौटते ही उसकी बाकी खानापूरी करके छपने भेज देगा।

गोरा के तिरस्कार से क्षुब्ध होकर अविनाश बोला, "आप गलत कह रहे हैं, आपने कारावास में जो दु:ख भोगा है, हम लोगों ने उससे ज़रा भी कम नहीं सहा। इस एक महीने से बराबर हम लोगों का हृदय भी तृषाग्नि में जलता रहा है।"

गोरा ने कहा, "यह तुम्हारी भूल है, अविनाश! ज़रा झाँककर देखने से ही पता चल जाएगा कि तुष ज्यों-का-त्यों पड़ा है और हृदय की भी कोई खास क्षति नहीं हुई है।"

अविनाश झेंपा नहीं, बोला, "राजपुरुश ने आपका अपमान किया है, लेकिन आज सारी भारत-भूमि के प्रतिनिधि होकर हम यह सम्मान का हार.... "

गोरा ने कहा, "बस, और नहीं सहा जाता!" और अविनाश को तथा उसके गुट को एक तरफ हटाता हुआ बोला, "परेशबाबू आइए, गाड़र पर सवार होइए।"

गाड़ी पर सवार होकर परेशबाबू की जान में जान आई। गोरा और विनय भी पीछे-पीछे सवार हो गए।

स्टीमर पर सवार होकर अगले दिन सबेरे गोरा घर पहुँच गया। बाहर ही उसने देखा, उसके गुट के लोगों ने भीड़ लगा रखी थी। किसी तरह उनसे छुटकारा पाकर वह भीतर आनंदमई के पास पहुँचा। वह आज सबेरे ही नहा-धोकर तैयार बैठी थी। गोरा के जाकर उनके चरण छूकर प्रणाम करते ही उनकी ऑखों से झर-झर ऑसू बहने लगे। जो ऑसू इतने दिनों से उन्होंने रोके रखे थे आज किसी तरह नहीं रुके।

गंगा-स्नान करके कृष्णदयाल के लौटने पर गोरा उनसे मिलने गया। उसने दूर से ही उन्हें प्रणाम किया, उनके चरण नहीं छुए। सकुचाकर कृष्णदयाल दूर आसन पर बैठे। गोरा ने कहा, "बाबा, मैं एक प्रायश्चित करना चाहता हूँ।"

कृष्णदयाल ने कहा, "उसकी तो कोई ज़रूरत नहीं दीखती।"

गोरा ने कहा, "मुझे जेल में और तो कोई कष्ट नहीं था, पर यही लगता रहता था कि मैं अपवित्र हो गया हूँ। वह ग्लानि अब भी है, इसलिए प्रायश्चित करना ही होगा।"

चिंतित होकर कृष्णदयाल ने कहा, "नहीं-नहीं, तुम्हारे इतना सोचने की ज़रूरत नहीं है। मैं तो इसकी सम्मति नहीं दे सकता।'

गोरा ने कहा, "अच्छा, तो इस बारे में मैं पंडितों की राय ले लूँ।"

कृष्णदयाल बोले, "किसी पंडित की राय नहीं लेनी होगी। मैं ही तुम्हें विधान देता हूँ, तुम्हें प्रायश्चित की ज़रूरत नहीं है।"

कृष्णदयाल जैसे आचार-विचार और छुआछूत मानने वाले व्यक्ति भी गोरा के लिए किसी तरह का नियम-संयम स्वीकार करना नहीं चाहते- न केवल स्वीकार नहीं करते बल्कि एकबारगी तो उसके विरुध्द अड़कर बैठ जाते हैं, इसका कारण आज तक गोरा नहीं समझ सका।

भोजन के लिए आज आनंदमई ने गोरा के साथ ही विनय का आसन बिछाया था। गोरा ने कहा, "माँ, विनय के आसन को थोड़ा दूर कर दो।"

अचकचाकर आनंदमई ने कहा, 'क्यों, विनय ने क्या अपराध किया है?"

गोरा ने कहा, "विनय ने कुछ नहीं किया, मैंने ही किया है। मैं अपवित्र हूँ।"

आनंदमई ने कहा, "सो हुआ करे। विनय इतना शुध्द-अशुध्द नहीं मानता।"

गोरा ने कहा, "विनय नहीं मानता, किंतु मैं तो मानता हूँ।"

भोजन के बाद दोनों बंधु जब ऊपर के सूने कमरे में जाकर बैठ गए तब उन्हें एक-दूसरे को कहने के लिए कोई बात ही नहीं सूझी। इस एक महीने में जो एक बात विनय के लिए सबसे ज्यादा महत्व की हो उठी थी उसे वह कैसा गोरा के सामने छेड़े, यह वह सोच ही नहीं पा रहा था। परेशबाबू के घर के लोगों के बारे में गोरा के मन में

भी एक जिज्ञासा थी, पर उसने भी कुछ न कहा। विनय ही बात छड़ेगा, यह सोचकर प्रतीक्षा करता रहा। हालाँकि उसने परेशबाबू से यह बात पूछी थी कि घर के सब लोग कैसे हैं, लेकिन वह तो केवल शिष्टाचार का सवाल था। वे सब अच्छी तरह हैं मात्र इतनी खबर से अधिक विस्तृत विवरण जानने के लिए उसका मन आतुर था।

इसी समय महिम कमरे में आए। बैठकर सीढ़ी चढ़ने के परिश्रम से थोड़ी देर हाँफते रहकर फिर बोले, "विनय, इतने दिन तो गोरा का इंतज़ार रहा। अब तो और कोई बात नहीं है, अब दिन और मुहूर्त्त तय कर लिया जाए। क्या राय है गोरा- क्या बात हो रही है, यह तो समझ रहे हो न?"

कुछ कहे बिना गोरा तनिक-सा हँस दिया।

महिम बोले, "हँसते हो? तुम सोच रहे होगे, अभी तक दादा वह बात नहीं भूले। लेकिन कन्या तो स्वप्न नहीं है- मैं स्पष्ट देख सकता हूँ, वह एक ठोस पदार्थ है- भूलने की गुंजाइश नहीं है, हँसने की भी बात नहीं है। गोरा, अब जैसा भी हो तय कर देना चाहिए।'

गोरा ने कहा, "तय करना जिनका काम है वह तो स्वयं मौजूद हैं।"

महिम ने कहा, "सत्यानाश! उनका तो अपना ही कुछ ठीक नहीं है- वह क्या ठीक करेंगे! तुम आ गए हो, अब सारा भार तुम्हारे ऊपर ही है।"

विनय आज गंभीर होकर चुप ही रहा, अपने स्वभाव-सिध्द हास्य से बात टालने की भी उसने कोई कोशिश नहीं की।

गोरा जान गया कि कहीं कोई अड़चन है। बोला, "मैं निमंत्रण पहुँचाने के काम का भार ले सकता हूँ, परोसने को भी राज़ी हूँ, लेकिन यह भार मैं नहीं ले सकता कि विनय तुम्हारी कन्या से विवाह करेंगे ही। जिनके निर्देशन से ये सह बाम दुनिया में होते हैं उनसे भी मेरी कोई खास जान-पहचान नहीं हैं, उन्हें मैं दूर से ही नमस्कार करता रहा हूँ।"

महिम बोले, "तुम्हारे दूर रहने से ही वह भी दूर ही रह जाएँगे। यह मत सोचो। हठात् कब आकर चौंका देंगे, कुछ कहा नहीं जा सकता। तुम्हारे बारे में उनका क्या इरादा है यह तो ठीक-ठीक नहीं कह सकता, लेकिन इनको लेकर तो एक विकट समस्या उठ

खड़ी हुई है। सारी ज़िम्मेदारी अकेले प्रजापति ठाकुर पर न छोड़कर खुद भी कुछ उपाय न करोगे तो अंत में पछताना भी पड़ सकता है यह मैं कहे देता हूँ।"

गोरा ने कहा, "जो भार मेरा नहीं है उसे न लेकर पछताने को मैं तैयार हूँ, लेकिन उसे लेकर पछताना तो और भी मुश्किल होगा, उसी से बचना चाहता हूँ।"

महिम ने कहा, "ब्राह्मण का लड़का जात, कुल, मान सब गँवा देगा और तुम बैठे देखते रहोगे? देश-भर के लोगों के हिंदुत्व की रक्षा के लिए तो तुम्हें नींद नहीं आती और इधर तुम्हारा अपना परम-बंधु जात को नदी में बहाकर ब्रह्म-घर में विवाह कर बैठे तो लोंगों को क्या मुँह दिखाओगे?विनय, तुम शायद नाराज़ हो रहे होगे, लेकिन तुम्हारी पीठ पीछे बहुत-से लोग ये सब बातें गोरा से कहते- बल्कि कहने को छटपटा रहे हैं- मैं सामने ही कह रहा हूँ- यह सभी के लिए उचित ही होगा। अगर अफवाह झूठी ही हो तो कह देने से ही खत्म हो जाएगी, और अगर सच हो तो सोच-समझ लेना होगा।"

महिम चले गए, तब भी विनय कुछ नहीं बोला। गोरा ने पूछा, 'क्यों विनय, क्या मामला है?"

विनय ने कहा, "केवल थोड़ी-सी खबरें बता देने से सारा कुछ समझा सकना बहुत मुश्किल है, इसीलिए सोचा था कि धीरे-धीरे तुम्हें सारा मामला समझाकर कहूँगा। लेकिन दुनिया में कुछ भी हमारी सुविधा के अनुसार सरलता से नहीं होना चाहता। घटनाएँ भी पहले शिकारी बाघ की तरह दबे पाँव बढ़ती रहती हैं और फिर अचानक एक ही छलाँग में गला धर दबाती हैं। फिर उनकी खबर भी आग की तरह पहले दबी-दबी सुलगती है और फिर सहसा भड़ककर जल उठती है तब उसे सँभालकर मुश्किल से हो जाता है। इसीलिए कभी-कभी सोचता हूँ, कर्म मात्र का त्याग करके बिल्कल जड़ा होकर बैठने में ही इंसान की मुक्ति है।"

हँसकर गोरा ने कहा, "तुम्हारे अकेले जड़ होकर बैठने से भी कहाँ मुक्ति मिलेगी? जब तक सारी दुनिया ही साथ-साथ जड़ न हो जाए तब तक वह तुम्हें स्थिर क्यों रहने देगी? उलटे इससे तो और मुश्किल हो जाएगी। दुनिया जब काम कर रही है तब तुम भी यदि काम न करोगे तो ठगे ही जाओगे। इसलिए यही देखना होगा कि घटना तुम्हारी असावधानी में ही न हो जाय- ऐसा न हो जाय कि और सब तो आगे बढ़ जाएँ और तुम तैयार भी न रहो।"

विनय ने कहा, "यही बात ठीक है। मैं ही तैयार नहीं रहता। इस बार भी मैं तैयार नहीं था। किस तरफ क्या हो रहा है, मैं समझ ही नहीं सका। लेकिन जब हो ही गया तो उसका दायित्व तो लेना ही होगा। जिसका शुरू में न होना ही अच्छा था, उसे आज अप्रिय होने पर भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता।"

गोरा ने कहा, "हुआ क्या है, यह जाने बिना उसके बारे में कोई सही राय दे सकना मेरे लिए तो कठिन है।"

खड़े होकर विनय ने कह ही डाला, "अनिवार्य घटनाओं के कारण ललिता के साथ मेरा संबंध ऐसे मोड़ पर आ पहुँचा है कि यदि उससे विवाह न करूँ तो उसे समाज में हमेशा के लिए अकारण अपमान और अन्याय सहते रहना पड़ेगा।"

गोरा ने कहा, "कैसा मोड़ है, मैं तो समझूँ।" विनय ने कहा, "वह लंबी बात है। धीरे-धीरे सब बताऊँगा, लेकिन इतना तो फिलहाल तुम मान ही लो!"

गोरा ने कहा, "अच्छा मान ही लेता हूँ। मुझे इस बारे में ही कहना है कि घटना अगर अनिवार्य हो तो उसका दु:ख भी निश्चित ही है। समाज में अगर ललिता को अपमान भोगना ही है तो उसका उपाय नहीं है।"

विनय ने कहा, "किन्तु उसका निवारण करना तो मेरे बस की बात है।"

गोरा ने कहा, "है, तब तो अच्छा ही है। लेकिन ज़बरदस्ती ऐसी बात कहने से तो नहीं चलेगा। ज़रूरत होने पर चोरी करना या खून करना भी इंसान के बस की बात होती है, लेकिन क्या सचमुच उसके बस की होती है? ललिता से विवाह करके तुम ललिता के प्रति कर्तव्य पूरा करना चाहते हो, लेकिन वही क्या तुम्हारा सबसे बड़ा कर्तव्य है? क्या समाज के प्रति कोई कर्तव्य नहीं है?"

समाज के प्रति कर्तव्य का स्मरण करके ही ब्रह्म विवाह के लिए विनय राज़ी नहीं हुआ, यह बात उसने नहीं कही। वह बहस पर तुल गया। बोला, "इस मामले में शायद मेरी राय तुमसे कभी नहीं मिलेगी। मैं व्यक्ति की ओर खिंचकर समाज के विरुध्द कुछ नहीं कह रहा हूँ। मैं तो यह कह रहा हूँ कि व्यक्ति और समाज दोनों के ऊपर धर्म है- उसी पर दृष्टि रखकर चलना होगा। जैसे व्यक्ति को बचाना मेरा चरम कर्तव्य नहीं, वैसे ही समाज को बचाना भी चरम कर्तव्य नहीं है, एकमात्र धर्म को बचान ही मेरा चरम लक्ष्य है।"

गोरा ने कहा, "व्यक्ति भी नहीं है समाज भी नहीं है, किंतु फिर भी धर्म है, ऐसे धर्म को मैं नहीं मानता।"

विनय को गुस्सा आ गया। बोला, "मैं मानता हूँ। व्यक्ति और समाज की भीति पर धर्म नहीं खड़ा है, बल्कि धर्म की भीति पर व्यक्ति और समाज है। जिसे समाज चाहता है धर्म कहकर उसी को मानना पड़े तो समाज की ही मुसीबत हो जाए। अगर समाज मेरी किसी न्याय-संगत स्वाधीनता में बाधा दे तो उस अनुचित बाधा को हटाकर ही समाज के प्रति कर्तव्य पूरा होता है। ललिता से विवाह करना यदि मेरा अन्याय न हो, बल्कि उचित हो, तब समाज के विरोध के कारण ही उससे हट जाना मेरे लिए अधर्म होगा।"

गोरा ने कहा, "न्याय और अन्याय क्या अकेले तुम्हीं से बँधे हैं? इस विवाह से अपनी भावी संतान को तुम किस स्थिति में डाल दोगे, यह क्यों नहीं सोचते?"

विनय ने कहा, "इस तरह सोचते रहकर ही तो मनुष्य सामाजिक अन्याय को चिरस्थाई बना देता है। तब फिर साहबों, अफसरों की लातें खाता हुआ जो किरानी बाबू हमेशा अपमान सहता चला जाता है, उसी को फिर क्यों दोष देते हो? वह भी तो संतान की ही बात सोचते हैं।"

विनय गोरा से बहस में जहाँ आ पहुँचा था इससे पहले उसकी वह स्थिति नहीं थी। कुछ पहले ही समाज से विच्छेद की संभावना से उसका मन व्याकुल हो उठा था। इस बारे में उसने अपने साथ किसी प्रकार की बहस नहीं की थी, और यदि गोरा के साथ बहस न उठ खड़ी हुई होती तो विनय का मन अपने पुराने संस्कारों के अनुसार उसकी वर्तमान प्रवृत्ति से उल्टी दिशा में ही चलता रहता। लेकिन बहस करते-करते उसकी प्रवृत्ति कर्त्तव्य-बुध्दि का सहारा लेकर धीरे-धीरे बल पड़ने लगी।

गोरा से ज़ोर की बहस छिड़ गई। गोरा ऐसी बहस में युक्तियाँ देने की ओर न जाकर बहुत ज़ोर-शोर से अपनी बात कहता था। इतने ज़ोर से कम ही लोग अपनी बात कहते होंगे। आज भी उसने इसी ज़ोर से ही विनय की सारी बातें ठेलकर गिरा देनी चाही, लेकिन आज उसे बाधा का सामना करना पड़ा। जब तक एक ओर गोरा और दूसरी ओर विनय का केवल मत था, तब तक विनय हार मानता आया था, लेकिन आज दोनों ओर दो वास्तविक मनुष्य थे; आज गोरा किसी वायव्य अस्त्र से किसी दूसरे वायव्य अस्त्र को नहीं काट रहा था, आज बाण जहाँ आकर गिरते थे, वहाँ वेदना-भरा मनुष्य का हृदय था।

अंतत: गोरा ने कहा, "मैं तुमसे दलीलबाज़ी नहीं करना चाहता। इसमें तर्क करने लायक खास बात कोई नहीं है, यह तो हृदय से समझने की बात है। ब्रह्म लड़की से विवाह करके तुम देश के साधारण लोगों से अपने को अलग कर लेना चाहते हो, यही मेरे लिए बड़े खेद की बात है। ऐसा काम तुम कर सकते हो, मैं किसी तरह नहीं कर सकता- यहीं तुममें और मुझमें अंतर है, ज्ञान में या बुध्दि में नहीं। जहाँ मेरा प्रेम है वहाँ तुम्हारा प्रेम नहीं है। तुम जहाँ छुरी मारकर अपने को मुक्त कर लेना चाहते हो वहाँ तुम्हें कोई दर्द नहीं होता, लेकिन ठीक वहीं पर मेरी धमनी है। मैं अपने भारतवर्ष को चाहता हूँ उसे तुम चाहे जितना दोष दो, जितनी गालियाँ दो, मैं उसी को चाहता हूँ, उससे ज्यादा मैं अपने को या किसी भी मनुष्य को नहीं चाहता। मैं ऐसा ज़रा-सा भी कोई काम नहीं करना चाहता जिससे भारतवर्ष से मुझे एक बाल-भर भी दूर हटने पड़े।"

विनय कुछ जवाब देने की कोशिश कर ही रहा था कि गोरा ने कहा, "नहीं विनय, तुम बेकार मुझसे तर्क करते हो। सारी दुनिया ने जिस भारतवर्ष को त्याग दिया है, उसका अपमान किया है, मैं उसी के साथ उसी अपमान के आसन पर ही बैठना चाहता हूँ- यही मेरा जाति-भेद का भारवतवर्ष, कु-संस्कारों का भारत-वर्ष, मूर्ति-पूजक भारतवर्ष! अगर तुम इससे अलग होना चाहते हो तो तुम्हें मुझ से भी अलग होना होगा।"

गोरा इतना कहकर उठकर कमरे में बाहर आकर छत पर टहलने लगा। विनय चुपचाप बैठा रहा। तभी बैरे ने आकर गोरा को खबर दी कि बहुत-से बाबू लोग उससे मिलने के लिए नीचे प्रतीक्षा कर रहे हैं। भागने का एक बहाना पाकर गोरा को तसल्ली हुई; वह नीचे चला गया।

बाहर आकर उसने देखा, और बहुत-से लोगों के साथ अविनाश भी आया हुआ है। गोरा ने समझ लिया था कि अविनाश नाराज़ हो गया है लेकिन नाराज़गी के कोई चिन्ह नहीं दीखे। वह तो और भी उच्छ्वसित प्रशंसा के साथ कल अपने हटा दिए जाने की बात सबको सुना रहा था। वह कह रहा था, "गौरमोहन बाबू के प्रति मेरी श्रध्दा अब और भी बहुत बढ़ गई है। अब तक मैं मानता था कि यह असाधारण आदमी हैं, लेकिन कल मैं जान गया कि यह महापुरुष हैं। कल हम इन्हें सम्मान देने गए थे, जैसे खुले तौर पर इन्होंने उस सम्मान की उपेक्षा की वैसा आजकल कितने लोग कर सकते हैं? यह क्या कोई मामूली बात है?"

एक तो यों ही गोरा का मन बेचैन था, उस पर अविनाश की इस भावुकता से वह तिलमिला उठा। बिगड़कर बोला, "देखो अविनाश, तुम लोग अपनी भक्ति के द्वारा ही आदमी का अपमान करते हो- तुम खुलेआम मेरा स्वाँग बनाकर मुझे नाच नचाना चाहते हो, उससे इंकार कर सकूँ इतनी हयाशर्म की भी आशा तुम लोग मुझसे नहीं करते! और इसको तुम लोग कहते हो, महापुरुष के लक्षण! तुम लोगों ने हमारे इस देश को क्या एक भाँडों का गुट समझ रखा है? सभी वाहवाही पाने के लिए नाचते फिर रहे हो- सच्चा काम क्यों कोई नहीं कर रहा है? मेरे साथ चलना चाहते हो तो ठीक है, झगड़ा करना चाहते हो तो वह भी ठीक है, लेकिन ऐसी वाहवाही मुझे मत देना, यही मेरी प्रार्थना है।"

अविनाश की श्रध्दा और भी बढ़ चली। खिले हुए चेहरे से उसने उपस्थित व्यक्तियों की ओर देखते हुए गोरा की बात की चमत्कारिता की ओर सबका ध्यान आकर्षित करना चाहा। बोला, "आशीर्वाद दीजिए, आपकी तरह हम लोग भी इसी निष्काम भाव से भारतवर्ष के सनातन गौरव की रक्षा करते हुए अपना जीवन अर्पित कर सकें।"

यह कहकर अविनाश ने गोरा के पैरों की धूल लेने के लिए जैसे ही हाथ बढ़ाए कि गोरा जल्द से पीछे हट गया।

अविनाश बोला, "गौरमोहन बाबू! हम लोगों से आप तो किसी प्रकार का सम्मान ग्रहण नहीं करेंगे। लेकिन हम लोगों को आनंद देने से तो विमुख मत होइए। हम लोगों ने यह निश्चय किया है कि आपके साथ हम सब एक दिन भोज करेंगे- इसके लिए तो आपको सम्मति देनी ही होगी।"

गोरा ने कहा, "मैं प्रायश्चित किए बिना तुम सबके साथ खाने नहीं बैठ सकूँगा।"

प्रायश्चित! अविनाश की आँखें चमक उठीं। वह बोला, "यह बात हममें से किसी को नहीं सूझी थी, लेकिन हिंदू-धर्म के किसी भी नियम की उपेक्षा गौरमोहन बाबू कभी नहीं कर सकते।"

सभी ने कहा, "यह तो बहुत अच्छी बात है। प्रायश्चित के समय ही सब लोग इकट्ठे होंगे और तभी भोज होगा। उस दिन देश के बड़े-बड़े अध्यापक, पंडितों को निमंत्रित किया जाएगा। हिंदू-धर्म आज भी कैसा जीवंत है यह गौर बाबू के इस प्रायश्चित के निमंत्रण से सबको मालूम हो जाएगा।"

प्रायश्चित-सभा कब-कहाँ बुलाई जाए, यह सवाल भी उठा। गोरा ने कहा, "इस घर में उसकी सुविधा नहीं होगी। हिंदू-धर्म आज भी कैसा जीवंत है यह गौर बाबू के इस प्रायश्चित के निमंत्रण से सबको मालूम हो जाएगा।"

प्रायश्चित-सभा कब-कहाँ बुलाई जाए, यह सवाल भी उठा। गोरा ने कहा, "इस घर में उसकी सुविधा नहीं होगी।" इस पर एक भक्त ने गंगा के किनारे के अपने बाग में इसकी व्यवस्था करने का प्रस्ताव किया। यह भी तय हो गया कि इसका खर्चा गुट के सब लोग मिलकर उठाएँगे।

विदा लेते समच खड़े होकर अविनाश ने व्याख्या देने के ढंग से हाथ हिला-हिलाकर सबको संबोधित करते हुए कहा, "गौरमोहन बाबू नाराज़ हो सकते हैं, लेकिन आज, जब मेरा हृदय भर उठा है, तब मैं यह

बात कहे बिना भी नहीं रह सकता कि वेद का उध्दार करने के लिए हमारी इसी पुण्य-भूमि पर अवतार ने जन्म लिया था- वैसे ही आज हिंदू-धर्म का उध्दार करने के लिए हमने फिर अवतार को पाया है। पृथ्वी पर सिर्फ हमारे ही देश में छः ऋतुएँ होंगी। हम लोग धन्य हैं कि यह सत्य हमारे सामने प्रमाणित हो गया। सब भाई बोलो, गौरमोहन बाबू की जय!"

अविनाश की वाक् चतुरता से प्रभावित होकर सभी मिलकर गौरमोहन का जयकार करने लगे। मर्माहत होकर गोरा वहाँ से भाग खड़ा हुआ।

जेल से मुक्ति पाने के बाद इस समय एक अवसाद-सा गोरा के मन पर छा गया। जेल में रहता हुआ अनेक बार वह कल्पना करता रहा था कि देश के लिए नए उत्साह से काम करेगा। लेकिन आज बार-बार वह अपने आप से यही पूछने लगा कि- हाय, मेरा देश कहाँ है? देश क्या केवल मुझ अकेले के पास है? जीवन के सभी संकल्पों की बचपन से जिस बंधु के साथ चर्चा करता रहा, वह आज इतने दिनों बाद महज एक स्त्री से विवाह करने के लिए अपने देश के सारे अतीत और भविष्य से पल-भर में इस निर्मम भाव से अलग हो जाने को तत्पर हो गया। और जिनको सब मेरे गुट के लोग कहते हैं, इतने दिन उन्हें इतना समझाने-बुझाने के बाद भी उन्होंने आज यही समझा कि मैंने केवल हिंदुत्व का उध्दार करने के लिए अवतार ग्रहण किया है, कि मैं केवल मूर्तिमान शास्त्र-वचन हूँ! और भारतवर्ष को कहीं स्थान नहीं मिला! छः ऋतुएँ! भारतवर्ष में छः ऋतुएँ हैं! षड् ऋतुओं के षडयंत्र में अगर अविनाश जैसा फल ही फलने को था तो दो-चार ऋतुएँ कम होने से भी कोई हर्ज न होता।

बैरे ने आकर सूचना दी, माँ गोरा को बुला रही है। सहसा गोरा चौंक-सा उठा, मन-ही-मन कह उठा-माँ बुला रही है। इस बात को उसने जैसे एक नया अर्थ देकर सुना। उसने कहा- और जो हो, मेरी तो माँ हैं और उन्होंने ही मुझे बुलाया है। वही मुझे सबसे मिला देंगी, वह किसी से कोई भेद न रखेंगी, मैं देखूँ कि जो भी मेरे अपने हैं, वे उनके पास बैठे हैं। जेल में भी माँ ने मुझे बुलाया था, वहाँ भी उन्हें देख सकता था, जेल के बाहर भी माँ मुझे बुला रही हैं, यहाँ भी मैं उन्हें देखने निकल पड़ा हूँ। कहते-कहते गोरा ने शरद की इस दोपहर के आकाश की ओर ऑखें उठाकर देखा। एक ओर विनय की और दूसरी ओर अविनाश की तरफ से विरोध का स्वर उठा था वह कुछ धीमा पड़ गया। दोपहर की धूप में मानो भारतवर्ष ने अपनी बाँहें उसकी ओर फैला दीं। समुद्र पर्यंत फैली हुई उसकी नदियाँ, पहाड़ और जनता गोरा की ऑखों के सामने झलक गईं, भीतर से उठकर एक मुक्त निर्मल आलोक इस भारतवर्ष को जैसे ज्योतिर्मय करता हुआ दिखा गया। गोरा का हृदय भर उठा, उसकी ऑखें चमकने लगीं, उसके मन में ज़रा भी नैराश्य न रहा। भारतवर्ष के उस अंतहीन कार्य के लिए, जिसका फल कहीं दूर भविष्य में मिलेगा, वह आनंदपूर्वक तैयार होने लगा। भारतवर्ष की जो महिमा उसने ध्यान में देखी है उसे वह प्रत्यक्ष नहीं देख सकेगा इसका कोई मलाल उसे न रहा। मन-ही-मन वह बार-बार दुहराने लगा- माँ मुझे बुला रही हैं- मैं वहीं जा रहा हूँ जहाँ अन्नपूर्णा हैं जहाँ जगध्दात्री बैठी हैं, उसी सुदूर काल में लेकिन फिर भी इसी क्षण में, वहीं मृत्यु के पास लेकिन फिर भी जीवन के बीच-जिस महिमा-मंडित भविष्य ने मेरे आज के दीन-हीन वर्तमान को सार्थक करके उज्ज्वल कर दिया है, मैं उसी की ओर जा रहा हूँ- उसी अति दूर, अति निकट की ओर माँ मुझे बुला रही हैं। इस आनंद में गोरा ने जैसे विनय और अविनाश को भी अपने साथ पा लिया, वे भी मानो उसके पराए न रहे। दूसरों के सभी छोटे-छोटे विरोध मानो एक विराट चरितार्थ में विलीन हो गए।

जब गोरा ने आनंदमई के कमरे में प्रवेश किया तब तब उसका चेहरा आनंद की आभा से दीप्त था। उसकी ऑखें सामने की सभी चीज़ों से परे मानो एक दूसरी ही भव्य-मूर्ति को देख रही थीं। कमरे में आकर एकाएक वह थोड़ी देर तक यह पहचान ही नहीं सका कि उसकी माँ के पास दूसरा कौन बैठा है।

सुचरिता ने खड़े होकर गोरा को नमस्कार किया। गोरा ने कहा, "अरे, आप आई हैं, बैठिए।"

गोरा ने 'आप आई हैं, बैठिए' कुछ ऐसे ढंग से कहा मानो सुचरिता का आना कोई साधारण बात नहीं है बल्कि एक विशेष भाव का उदय है।

एक दिन सुचरिता के संपर्क से गोरा पलायन कर गया था, पिछले जितने दिन वह तरह-तरह के दु:ख और काम में उलझा हुआ भटकता रहा था, उतने दिन वह बहुत-कुछ सुचरिता की बात को अपने से दूर रख सका था। लेकिन जेल में बंद हो जाने पर सुचरिता की स्मृति को वह किसी तरह न हटा सका था। एक समय ऐसा भी था, जब गोरा के मन में इस बात का कण भी नहीं था कि भारतवर्ष में स्त्रियाँ भी हैं; इस सत्य को इतने दिनों बाद उसने सुचरिता में ही पहचाना। सहसा एक क्षण में इतनी बड़ी और इतनी प्राचीन सच्चाई को सामने पाकर उसके आघात से जैसे उसकी बलिष्ट प्रकृति काँप उठी। बाहर की धूप और खुली हवा की दुनिया की याद जब जेल में उसे सताने लगी, तब वह दुनिया केवल उसके कर्मक्षेत्र के रूप में नहीं दीखी, न वह निरा पुरुष-समाज ही नज़र आई। वह चाहे जैसे ध्यान करने का यत्न करता, उसके सम्मुख बाहर के इस सुंदर संसार की दो अधिष्ठात्री देवियों की ही मूर्ति आती; चाँद-सितारों का आलोक विशेष रूप से उन्हीं के चेहरे पर पड़ता, स्निग्ध नीलिमायुक्त आकाश उन्हीं के चेहरे को घेर रहता- एक चेहरा जन्म से परिचित उसकी माता का था, और दूसरे नाजुक सुंदर चेहरे से उसका परिचय नया ही था।

जेल की एकाकी घुटन में गोरा उस चेहरे की स्मृति से विरोध का भाव न रख सका। इस भाव की पुलक जेल में भी एक गहरी मुक्ति उसके निकट ले आती, जेल के कठिन बंधन उसके लिए मानो छायामय, झूठे सपने जैसे हो जाते। स्पंदित हृदय की सूक्ष्म तरंगें जेल की दीवारों को भेदकर आकाश में मिलकर वहाँ के फूल-पत्तों में लहराती रहतीं और कर्मक्षेत्र में लीलायित होती रहतीं।

गोरा ने सोचा था, कल्पना-मूर्ति से भय का कोई कारण नहीं है, इसलिए इस एक महीने तक उसने उसे निर्बाध छूट दे रखी थी। वह समझता था कि केवल वास्तविक चीज़ों से ही डरने का कारण हो सकता है।

जेल से बाहर आते ही जब गोरा ने परेशबाबू को देखा तब उसका मन आनंद से लबालब हो उठा था। वह आनंद केवल परेशबाबू को देखने का नहीं था। उसके साथ गोरा के जेल-जीवन की संगिनी कल्पना ने भी कहाँ तक अपनी माया लदी है, यह वह पहले नहीं समझ पाया। किंतु धीरे-धीरे वह यह समझ गया। स्टीमर तक पहुँचते-पहुँचते उसने स्पष्ट अनुभव किया कि परेशबाबू उसे जो इतना आकृष्ट कर रहे हैं वह केवल अपने ही गुण से नहीं।

गोरा ने इतने दिन बाद फिर कमर कसी और बोला, "हार नहीं मानूँगा।" स्टीमर में बैठे-बैठे ही उसने फिर निश्चय कर लिया कि वह फिर कहीं दूर निकल जाएगा, किसी तरह सूक्ष्म बंधन में भी अपने मन को नहीं बँधने देगा।

इसी बीच विनय से उसकी बहस छिड़ गई थी। विच्छेद के बाद बंधु से पहली भेंट के समय ही बहस इतनी आगे न बढ़ जाती यदि उसके भीतर-ही-भीतर गोरा अपने से भी बहस न कर रहा होता। इस बहस के सहारे गोरा अपने सामने अपनी प्रतिष्ठा-भूमि को भी स्पष्ट कर लेना चाहता था। इसीलिए वह इतना ज़ोर देकर बात कह रहा था। उस ज़ोर की उसे अपने लिए ही विशेष ज़रूरत थी। जब उसके उस ज़ोर ने विनय के मन को उसी तरह उत्तर देने के लिए उत्तेजित किया, और विनय गोरा की बातों का केवल खंडन करने लगा और उन्हें निरा कठमुल्लापन मानकर उनके प्रति विद्रोह हो उठा, तब उसे ज़रा भी यह ध्यान नहीं रहा कि गोरा अगर स्वयं अपने पर वार न कर रहा होता तो विनय पर इतने भीषण वार कभी न करता।

विनय के साथ बहस होने के बाद गोरा ने निश्चय किया- युध्द-क्षेत्र छोड़ देने से नहीं चलेगा। मैं अपने प्राणों के भय से विनय को छोड़ जाऊँ तो विनय कभी नहीं बचेगा।

गोरा का मन उस समय भावावेश में था। उस समय सुचरिता को वह एक व्यक्ति विशेष के रूप में नहीं देख रहा था बल्कि एक भाव ही समझ रहा था। सुचरिता के रूप में भारत की नारी-प्रकृति ही उसके सामने मूर्तिमान हो रही थी। भारतीय ग्रह को अपने पुण्य, सौंदर्य और प्रेम से मधुर और पवित्र करने के लिए ही इसका आविर्भाव हुआ है। जो लक्ष्मी भारत के भविष्य को पाल-पोसकर बड़ा करती है, रोगी की सेवा करती हैं, दु:खी कोसांत्वना देती हैं, तुच्छ को भी प्रेम का गौरव और प्रतिष्ठा देती हैं- जिसने दु:ख और दुर्गति में भी हममें से अति दीन का भी त्याग नहीं किया,अवज्ञा नहीं की- जिसने हमारी पूजा की पात्र होकर भी हममें से अयोग्यतम को भी अपनी एकांत पूजा दी, जिसके निपुण सुंदर हाथ हमारे काम के लिए समर्पित हैं और जिसका चिर-सहिष्णु, क्षमा भरा प्रेम हमें ईश्वर से एक अक्षय दान के रूप में मिला है- उसी लक्ष्मी की एक प्रतिच्छवि को गोरा अपनी माता के पास प्रत्यक्ष बैठी देखकर आनंद-विभोर हो उठा। उसे लगा, इस लक्ष्मी की ओर हम लोगों ने देखा ही नहीं, इसे हमने सबसे पीछे ठेल रखा था, हमारी इससे बड़ी दुर्गति और क्या हो सकती है! उसे जान पड़ा, देश का मतलब यही है, सारे भारत के मर्मस्थान पर, प्राणों के निकेतन शतदल पद्म पर यही मूर्ति बैठी है, हम ही इसके सेवक हैं। देश की दुर्गति में इसी का

अपमान है- इस अपमान के प्रति हम लोग उदासीन रहे हैं,इसीलिए हमारा पौरुष आज कलंकित है।

गोरा अपने ही विचारों पर स्वयं चकित हो गया। जब तक भारतवर्ष की नारी उसके अनुभव में नहीं आई थी, तब तक उसकी भारतवर्ष की उपलब्धि कितनी अधूरी थी, यह वह इससे पहले नहीं जानता था। गोरा के लिए नारी जब तक अत्यंत छायामय थी, तब तक देश से संबंधित उसका कर्तव्य-बोध कितना अधूरा था! मानो शक्ति थी किंतु उसमें प्राण नहीं थे, मानो पेशियाँ थीं किंतु स्नायु-तंतु नहीं थे। पल-भर में ही गोरा समझ गया कि नारी को हम जितना ही दूर करके, जितना ही क्षुद्र बनाकर रखते हैं उतना ही हमारा पौरुष भी क्षीण होता जाता है।

इसलिए जब सुचरिता से गोरा ने यह कहा, 'आप आई हैं' तब वह सिर्फ एक आम शिष्टता की बात नहीं थी- इस अभिवादन में उसके जीवन का एक नया पाया हुआ आनंद और विस्मय ही प्रकट हुआ था।

कारावास के कुछ चिन्ह गोरा के शरीर पर अभी मौजूद थे। वह पहले से बहुत दुबला हो गया था। जेल के भोजन से उसे अरुचि होने के कारण इस एक महीने-भर वह लगभग उपवास ही करता था। उज्ज्वल गोरा रंग भी पहले से कुछ मैला हो गया था। बाल बहत छोटे कटवा देने से उसके चेहरे की कृषता और भी अधिक दीखने लगी थी।

सुचरिता के मन में गोरा के शरीर की इस क्षीणता से ही एक विशेष वेदना जनित चिंता जाग उठी। प्रणाम करके गोरा के पैरों की धूल लेने को उसका मन तड़प उठा। उसे गोरा ऐसी उद्दीप्त आग की शुध्द अग्नि शिखा-सा प्रकाशमान दीखा जिसमें धुआँ या लकड़ी कुछ भी न दीख रहा हो। एक करुणा-मिश्रित भक्ति के आवेश से सुचरिता का हृदय काँपने लगा, उसके मुँह से कोई बात न निकल सकी।

आनंदमई ने कहा, "मेरे लड़की होती तो मुझे कितना सुख होता, यह मैं अब समझ सकी हूँ, गोरा! तू जितने दिन नहीं था, सुचरिता मुझे इतनी सांत्वना देती रही है कि मैं कह नहीं सकती। पहले तो इनका परिचय मेरे साथ नहीं था- लेकिन दु:ख के समय दुनिया की बहुत-सी बड़ी और अच्छी चीज़ों से परिचय हो जाता है, दु:ख का यह गौरव अब समझ सही हूँ। दु:ख में ईश्वर कहाँ-कहाँ से सांत्वना पहुँचा सकते हैं, यह हम हमेशा जान नहीं पाते, इसीलिए दु:ख पाते हैं। बेटी, तुम लजा रही हो, लेकिन मेरे दु:ख के समय में तुमने मुझे कितना सुख दिया है, यह बात तुम्हारे सामने भी कहे बिना मैं कैसे रह सकती हूँ?"

सुचरिता के लज्जा से लाल चेहरे की ओर एक बार कृतज्ञता-भरी दृष्टि से देखकर गोरा आनंदमई से बोला, "माँ, तुम्हारे दु:ख के दिन यह तुम्हारे दु:ख का भार लेने आई थीं और आज तुम्हारे सुख के दिन भी तुम्हारे सुख को बढ़ाने आई हैं- जिनका दिल बड़ा होता है ऐसी उदारता उन्हीं में होती है।"

विनय ने सुचरिता का संकोच देखकर कहा, "दीदी, चोर के पकड़े जाने पर उसे चारों ओर से मार पड़ती है। आज तुम इन सबके हाथों पड़ गई हो, उसी का फल भोग रही हो। अब भागकर कहाँ जाओगी? मैं तो तुम्हें बहुत दिन से पहचानता हूँ। किंतु मैंने किसी के सामने कभी भंडाफोड़ नहीं किया, चुप ही बैठा रहा हूँ। पर मन-ही-मन जानता रहा हूँ कि कोई भी बात बहुत दिन तक गुप्त नहीं रह सकती।"

हँसकर आनंदमई बोलीं, "तुम तो ज़रूर ही चुप रहे हो! बड़ा आया चुप बैठा रहने वाला! इसने जिस दिन से तुम लोगों को जाना है उसी दिन से यह तुम लोगों का गुणगान करते-करते मानो अघाता ही नहीं।"

विनय ने कहा, "यह सुन रखो, दीदी! मैं गुणग्राही हूँ, और अकृतज्ञ भी नहीं हूँ, इसका गवाह और सबूत सब हाज़िर है।"

सुचरिता ने कहा, "इससे तो आपके ही गुणों का परिचय मिलता है।"

विनय ने कहा, "मेरे गुणों का परिचय आपको मुझसे कभी नहीं मिलेगा। यदि वह पाना चाहें तो माँ के पास आइएगा, सुनकर अचंभे में आ जाएँगी। उनके मुँह से सुनकर तो मैं ही विस्मित हो जाता हूँ। मेरा जीवन-चरित्र अगर माँ लिखें तो मैं जल्दी ही मर जाने को तैयार हूँ।"

आनंदमई ने कहा, "ज़रा सुनो तो इस लड़के की बात!"

गोरा बोला, "विनय, तुम्हारे माँ-बाप ने तुम्हारा नाम ठीक ही रखा था।"

विनय ने कहा, "जान पड़ता है उन्होंने मुझसे और किसी गुण की कोई उम्मीद ही नहीं की, इसलिए विनय के गुण की दुहाई दी, नहीं तो दुनिया में बड़ी हँसाई होती।"

इस प्रकार पहली भेंट का संकोच दूर हो गया।

सुचरिता ने विदा लेते समय विनय से कहा, "आप एक बार हमारी तरफ नहीं आएँगे?"

सुचरिता ने विनय से तो आने के लिए कह दिया पर गोरा से नहीं कह सकी। गोरा ने इसका ठीक मतलब नहीं समझा और उसके मन को कुछ चोट पहुँची। विनय सहज ही सबके बीच अपना स्थान बना लेता है किंतु गोरा वैसा नहीं कर सकता। इसके लिए गोरा को इससे पहले कभी कोई पछतावा नहीं हुआ था, लेकिन आज अपनी प्रकृति की इस कमी को उसने कमी के रूप में ही पहचाना।

गोरा - Gora in Hindi

1. गोरा अध्याय
2. गोरा अध्याय
3. गोरा अध्याय
4. गोरा अध्याय
5. गोरा अध्याय
6. गोरा अध्याय
7. गोरा अध्याय
8. गोरा अध्याय
9. गोरा अध्याय
10. गोरा अध्याय
11. गोरा अध्याय
12. गोरा अध्याय
13. गोरा अध्याय
14. गोरा अध्याय
15. गोरा अध्याय
16. गोरा अध्याय
17. गोरा अध्याय
18. गोरा अध्याय
19. गोरा अध्याय
20. गोरा अध्याय